International Journal of Multidisciplinary Education and Research

International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.in
Volume 1; Issue 7; September 2016; Page No. 50-51

भारत की सांस्कृतिक विरासत व सर्वधर्म सद्भावना के प्रतीक : श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी

डा. सुदर्शन राठी

ऐसोशिएट प्रोफेसर हिन्दी, महाराजा अग्रसेन महिला महाविद्यालय, झज्जर, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

देवदूत, कवि, योद्धा, दार्शनिक, राजकुमार और एकांतवासी गुरु गोबिन्द सिंह हर रूप में अपनी गहन मानवीयता और सदस्यता के लिए प्यार से याद किये जाते हैं। बयालीस वर्ष के अल्प समय में उन्होंने असाधारण युक्ति और सोद्देयता से विभिन्न भूमिकाएं अदा कीं। कालांतर में वह हमारी धार्मिक परम्परा के पौरुषयुक्त और सकारात्मक तत्वों के प्रतीक बन गए। इतिहास के पृष्ठों से जब उनकी छवि हमारी कल्पना में साकार होने लगती है तो हमारी स्मृति में कीर्ति, शौर्य और शानो–शौक्त के सारे नज़ारे फीके पड़ जाते हैं। सिखों की अपने इतिहास और परम्परा की स्मृति के केन्द्र में उनकी छवि विद्यमान है। वह आज भी एक खास तरह का आत्मिक जोश पैदा करती है और सिख अपने बीच गुरु की आत्मा को उपस्थित पाते हैं। उनके निकट अतीत के संकटकालीन क्षणों में सफेद बाज के स्वामी उनके उतने ही मूर्त और वास्तविक नायक और पथ–प्रदर्शक हैं जितने वह अपने जीवन काल में रहे थे।

'सवा लाख से एक लड़ाऊँ चिड़ियों सों मैं बाज तड़ऊँ,
तबे गोबिन्द सिंह नाम कहाऊँ।'

यह पंक्तियॉ सिख धर्म के दसवें और अन्तिम गुरु गोबिन्द सिंह जी के जीवन को समझने के लिए पर्याप्त हैं। एक महानवीर, सैन्य कौशल में निपुण और आदर्श व्यक्तित्व के स्वामी गुरु गोबिन्द सिंह जी हमेशा वन्दनीय रहेंगे। गुरु गोबिन्द सिंह जी का जन्म 22 दिसम्बर 1666 को माता गुर्जरी जी तथा पिता श्री गुरु तेगबहादुर जी के घर हुआ। कश्मीरी पंडितों को ओरंगजेब द्वारा जबरदस्ती मुसलमान बनाने से बचाने के लिए संघर्ष करते हुए जब पिता गुरु तेगबहादुर जी शहीद हो गए तब इन्हें दसवें गुरु का पद प्राप्त हुआ। इनकी मृत्यु 7 अक्टूबर 1708 को हुई।

गुरु गोबिन्द सिंह जी पहले महापुरुष थे जिन्होंने भारतवर्ष में विशुद्ध हिन्दू राष्ट्र की स्थापना हेतु न केवल घोषणा की बल्कि स्वयं जीवन पर्यन्त उसके लिए संघर्षशील रहे। नैणादेवी के शक्तिपीठ में जाकर उन्होंने उद्घोष किया, ''सकल देश में खालसा पंथ गाजै, जगे धर्म हिन्दू सभै द्वन्द्व भाजै।''[1] इसे महज संयोग ही समझना चाहिए कि दशम गुरु ने हिन्दू राष्ट्र के लिए सेना निर्माण का कार्य वैसाखी दिवस की आनन्दपुर (पंजाब) में पॉच प्यारों के परिवर्तन से प्रारम्भ किया और सुदूर महाराष्ट्र में अपनी इहलीला समाप्त की।

गुरु गोबिन्द सिंह जी का व्यक्तित्व एक विषपायी नीलकण्ठ का व्यक्तित्व था। पंजाब भारत की ऐसी ध्वस्त ड्यौढ़ी रहा है जिसका पददलन असंख्य आक्रमणकारियों ने आते–जाते किया है। इसी भूखण्ड में उठे विषमताओं के विष को गुरु गोबिन्द सिंह जी ने ग्रहण किया और उनका व्यक्तित्व विराट हो गया। यह विराट व्यक्तित्व अपनी अनेक मुद्राओं में सामने आता है। एक ओर इसमें भारतीय गौरव, शौर्य, पराक्रम का अपराजेय रूप मिलता है दूसरी ओर बलिदान और उत्सर्ग का महामहिमरूप मिलता है। साक्षात वीर रस का रूप भी उनके व्यक्तित्व के माध्यम से मूर्तिमान हो उठता है। ऐसा कालजयी और मृत्युंजयी व्यक्तित्व पाकर भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य धन्य हो उठा।

जब गुरु गोबिन्द सिंह जी ने गुरुनानक की आध्यात्मिक परम्परा का उत्तराधिकार संभाला तो देश में मुगल शासन के डेढ़ सौ वर्ष बीत चुके थे। इस साम्राज्य का संस्थापक एक बेघर जोखिम बाज था। जो आवश्यक साधनों के बिना हिन्दुस्तान में घुस आया था। उसके बावजूद उसने एक विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर दिया। एक कठोर सामन्ती ढाँचे में पलती हुई विदेशी तानाशाही दिन–ब–दिन अत्याचारी होती जा रही थी लेकिन विद्रोह या प्रतिरोध का कोई प्रयास नहीं किया जाता था। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने पूर्ववती गुरुओं से प्राप्त विरासत का उपयोग करते हुए लोगों के चरित्र में एक उल्लेखनीय परिवर्तन ला दिया और उन्हें जड़ता से बाहर निकाला। राजनीतिक अत्याचार और धार्मिक असहिष्णुता के विरुद्ध तीव्र विरोध की आवाज बुलन्द करके और इनसे लड़ने के तरीके निकालकर उन्होंने देश भक्ति की भावना को जन्म दिया। मानवीय भाईचारे का पाठ सिखाकर और इस आदर्श को साकार करने के लिए व्यावहारिक कदम उठाकर उन्होंने असमानता और असंगतियों से भरी सामाजिक रीतियों को समाप्त कर सामाजिक जीवन में एक नयी चेतना पैदा की। खालसा–पंथ की दीक्षा देकर उन्होंने सामाजिक संवेदनशीलता और सामान्य हित को जीवन का अंग बनाया। इस पंथ का अनुगामी बलिदान के साहस और उमंग से भर जाता था और स्वयं को पूरी सेना के बराबर समझता था। वह अपनी द्वीपवासी मानसिकता छोड़ कर एक बड़ी बिरादरी में आ मिलता था। तलवार उसका नया व्यवसाय थी और इंसाफ और धर्म की रक्षा में वह उसे चलाने से हिचकिचाता नहीं था। गुरु गोबिन्द सिंह जी के बताये सिद्धांतों और खालसा की कीर्ति के लिए संघर्ष करते हुए बलिदान सहर्ष स्वीकार किया जाता था, वह इस क्षण की प्रतीक्षा करते थे। अन्याय से समझौता करना अधः पतन और कायरता की निशानी समझा जाता था। इस वीरतापूर्ण नए ओज ने देश में एक क्रान्तिकारी आवेग पैदा किया और भारतीय इतिहास की धारा को एक नयी दिशा दी। उच्च सामाजिक और नैतिक मूल्यों की संरचना के निर्माता की ऐतिहासिक भूमिका के अतिरिक्त गुरु गोबिन्द सिंह जी का व्यक्तिगत आकर्षण और प्रभाव उल्लेखनीय घटनाएँ है। उनसे अधिक सर्वांगीण और विशद प्रतिभा की कल्पना करना कठिन है। मुस्लिम इतिहासकार सैयद मुहम्मद लतीफ़ के शब्दों में गुरु गोबिन्द सिंह ''मिम्बर में विधान बनाने वाले, रणक्षेत्र में योद्धा, अपने मसनद पर महाराजा और खालसा के समाज में फकीर हैं।''[2] वह अपने दैनिक उद्देश्य के प्रति पूर्ण जागरुक देवदूत थे और जन–साधारण से अत्यधिक प्यार करते थे। वह विद्वता और विद्वानों के संरक्षण में शाहदिल, आत्मिक दृष्टि के कवि, मनुष्यों के सरदार, बेमिसाल सामरिक कौशल से युक्त पराक्रमी सैनिक सामाजिक उद्धारक, मुक्तिदाता और व्यापक मानवीय सहानुभूति वाले संत थे। वह जन–साधारण के दुखो और यातनाओं को गहराई से महसूस करते थे और उनके शमन के लिए उन्होंने बड़ी–बड़ी कुरबानियाँ दी। बाल्यावस्था में मासूमियत से जो सोद्देश्य शब्द उन्होंने बोले थे

उनसे उनके पिता गुरु तेग बहादुर को न्याय और स्वाधीनता के सिद्धांतों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने के अपने इरादे को और सहारा मिला। उन्होंने बहुत कुछ खोने के अलावा अपने चार बेटों की कुरबानी दी ताकि वह ऐतिहासिक कार्य पूरा हो सके जिसके प्रति वह और उनके अनुयायी समर्पित थे।

गुरु गोबिन्द सिंह जी के कृतित्व को गुरु नानक के कार्य की पूर्ति के रूप में ही ज्यादा अच्छी तरह से समझा जा सकता है। 'विचित्र नाटक' में अपने जीवन के उद्देश्य बताते हुए गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा है –

''याही काज धरा हम जनमँ।। समझ लेहु साधू सभ मन मँ।।
धरम चलावन सँत उबारन।। दुष्ट सभन को मूल उबारन।।''[3]

गुरु गोबिन्द सिंह जी अत्याचार और असहिष्णुता के विरुद्ध संघर्ष को कटिबद्ध थे। वह किसी इलाके, जागीर, सांसारिक सत्ता के लिए अथवा किसी धर्म या मत के विरुद्ध नहीं लड़े थे। उनके प्रशंसकों और भक्तों मं हिन्दू भी थे, मुसलमान भी। गुरु गोबिन्द सिंह ने गुरुओं द्वारा स्थापित मूल्यों की रक्षार्थ ही तलवार उठायी थी। उनके पिता और दादा ने अपने प्राणों की कीमत चुकाकर इन मूल्यों की रक्षा की थी। उन्होंने कोई युद्ध अपनी ओर से नहीं छेड़ा, न युद्ध में अपनी विजय के बाद कोई इलाका या सम्पत्ति हड़पी। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध उनका संघर्ष गुरु नानक की शिक्षाओं के अनुरूप था। गुरु नानक द्वारा निर्धारित और बाद के आठ गुरुओं द्वारा पुष्ट किये गए सिख धर्म के आंतरिक सिद्धान्त को अन्तिम गुरु गुरु गोविन्द सिंह ने उत्कर्ष बिन्दु तक पहुँचा दिया।

- गुरु गोबिन्द सिंह ने सन् 1699 में खालसा का निर्माण मुगल शासकों के खिलाफ लड़ने के लिए किया।
- उन्होंने सिख गुरुओं के सभी उपदेशों को गुरु ग्रन्थ साहिब में संगृहीत किया।
- सिक्खों के नाम के आगे 'सिंह' लगाने की परम्परा उन्होंने ही शुरू की।
- गुरुओं के उत्तराधिकारियों की परम्परा को समाप्त किया और गुरु ग्रन्थ साहिब को सिखों के लिए गुरु का प्रतीक बनाया।
- युद्ध में सदा तैयार रहने के लिए उन्होंने पंचककारों को सिखों के लिए अनिवार्य बनाया, जिसमें केश, कंघा, कच्छा, कड़ा और कृपाण शामिल हैं।
- 'चंडी दीवार' नामक गुरु सिंह जी की रचना सिख साहित्य में विशेष महत्त्व रखती है।

गुरु गोबिन्द सिंह ने सिखों के पवित्र ग्रन्थ 'गुरु ग्रंथ साहिब' को पूरा किया तथा उन्हें गुरु रूप में सुशोभित किया। 'विचित्र नाटक' को उनकी आत्मकथा माना जाता है। यही उनके जीवन के विषय में जानकारी का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। यह दसम ग्रन्थ का एक भाग है। दसम ग्रन्थ गुरु गोबिन्द सिंह की कृतियों के संकलन का नाम है। 'जफ़रनामा' अर्थात 'विजय पत्र' गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा मुगल शासक ओरंगजेब को लिखा गया था, इसकी भाषा फारसी है। यह पत्र आध्यात्मिकता, कूटनीति तथा शौर्य की त्रिवेणी है।

गुरु गोबिन्द सिंह जहाँ विश्व की बलिदानी परम्परा में अद्वितीय थे वे स्वयं एक महान लेखक, मौलिक चिंतक तथा कई भाषाओं के ज्ञाता थे। वे विद्वानों के संरक्षक थे। उनके दरबार में 52 कवियों तथा लेखकों की उपस्थिति रहती थी, इसलिए उन्हें 'संत सिपाही' भी कहा जाता था । वे भक्ति तथा शक्ति के अद्वितीय संगम थे। इतिहास में पहला उदाहरण मिलता है जब गुरु ने शिष्य को भी अपना गुरु माना हो।

''खालसा मेरो सतगुरु पूरा
खालसा मेरो सज्जन सूरा
खालसा मेरो बुध अरज्ञान
खालसे का हौं धरो ध्यान
हौं। खालसे को खालसा मेरो
ओत पोत सागर बुन्देरो''[4]

शताब्दियों से चली आ रही जाति–पाति पर यह एक घोर चोट थी, जब सभी जातियाँ ऊँच–नीच, छूत–अछूत, स्वर्ण –अस्वर्ण का भेद त्याग कर एक पंथ में दीक्षित हुई है। सदियों की दीवारें टूट गई, हृदय के बन्धन खुल गए। अमावस का समय बीत गया। सारा समाज रणक्षेत्र बन गया। प्रत्येक प्राणी सैनिक बन गया। दलित रक्षा हेतू खालसा पंथ अभेद कवच बन गया। इसके बाद सारा जीवन उनका संघर्षमय हो गया। रणक्षेत्र ही कार्य क्षेत्र बन गया। अश्वपीठ ही शैय्या बन गई। एक के बाद एक युद्धों की लम्बी श्रृंखला चलती रही। कभी पहाड़ी राजाओं से, कभी मुगलों से। जब ओरंगजेब ने उनके दोनों पुत्रों को दीवार में जिन्दा चिनवाया तो उनकी पत्नी के पूछने पर सन्यासी की तरह गुरु जी ने कहा–

इन पुत्रन के सीस पर
वार दीये सुत चार
चार मुए तो क्या भया
जीवत कई हजार।[5]

गोबिन्द सिंह दर्शन के सम्बन्ध में डॉ. जयभगवान गोयल का उद्धरण द्रष्टव्य है –

''उनका न तो मुसलमानों से विरोध था, न इस्लाम से विरोध था उन आसुरी शक्तियों से जो अन्याय, अधर्म, असत्य, अनीति, अत्याचार का प्रतीक है। किसी अन्य मत या सम्प्रदाय से भी उनका कोई विरोध नहीं था। विरोध था बाह्याचार, बाह्याडम्बर, पाखण्ड, अंधविश्वास और अज्ञान से जीवन पर्यन्त एक सच्चे धर्म यौद्धा की भॉति वे उनके विरुद्ध लड़ते रहे।..... देश प्रेम, धर्म प्रेम और प्रभु प्रेम यही उनका अमर संदेश था। जाति–पाति, वर्ग, वर्ण भेद एवं वर्णश्रम के कट्टर विरोधी और मानव मात्र की एकता में दृढ़ विश्वास रखने वाले, सत्य श्रेष्ठ न्याय के लिए लड़ने वाले वे सच्चे धर्मवीर थे। उनकी जीवन दृष्टि आशामयी, उत्साहपूर्ण और आशावादी थी और जीवन चर्चा साहस पूर्ण, संयमित और सात्विक। उनको योद्धा का रूप संत की रक्षार्थ ही धारण करना पड़ा था। यौद्धा रूप धर्म समापन का साधन था, साध्य नहीं। वस्तुतः वे सही अर्थों में सन्त योद्वा थे।''[6]

वाहे गुरु जी दा खालसा, वाहे गुरु जी दी फतेह''।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1. गुरु गोबिन्द सिंह, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री, पृ. पुरोवाक (2)।
2. गुरु गोबिन्द सिंह, हरबंस सिंह, अनुवादक असदजैदी, पृ. 98
3. वहीं, पृ–100।
4. गुरु गोबिन्द सिंह, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री, पृ. 24।
5. वहीं, पृष्ठ वहीं।
6. गुरु गोबिन्द सिंह, विचार और चिन्तन, डॉ. जयभगवान गोयल, पृ. 32–33।